कवित्त-कानन B.A.I M.Com 100 — नीषा कुमारी

रसखान

(1) खंजन नैन फंदे पिंजरा — — — — उहै यह बावरी आई।

शब्दार्थ — खंजन - पक्षी, फंदे - बंद, थिर - स्थिर, कुलकानि - (कुल की मर्यादा)

प्रसंग — प्रेम की दीवानगी प्रसिद्ध है। उसमें लोक-लाज की चिंता नहीं होती। यहाँ राधा की ऐसी ही मन स्थिति का चित्रण है।

आशय — खंजन पक्षी की तरह राधा के चंचल नैन अब कृष्णरूपी पिंजड़े में बंद हो गये हैं। अब वह स्थिर कैसे रहे। उसने जब से उनकी मुस्कान देखी है कुल की मर्यादा का भी ध्यान न रहा। नैनों की चंचलता समाप्त हो गयी है। वे तो चित्र की तरह स्थिर हो गये हैं। मुह से बोल तक नहीं फूटते कि कुछ कह सके। आखिर वह क्या करें, वह जहाँ भी जाती है उसकी हालत देख सभी सखियाँ यही कहती उठती है कि लो, यह बावरी आ गयी।

विशेष — इस सवैये में रूपक अलंकार का सुंदर प्रयोग हुआ है।

(11) कान्ह भये बस बाँसुरी — — — ब्रज में बसुरी रहि है॥

शब्दार्थ — कान्ह - कृष्ण। चाहि - चाहना। निसिद्यौस - दिन रात तापन - गर्मी। सहि - सहना। दहि — जलाना

प्रसंग — कृष्ण के प्रति गोपियों के अनन्य प्रेम का चित्रण है। वे कृष्ण-प्रेम की दीवानी हैं। दिन-रात उनके प्रेम में पागल है। उधर कृष्ण है कि उनका मन अपनी बाँसुरी में लगा है। बिना मुरली के एक क्षण भी नहीं रह सकते। यह देख गोपियों के मन में बाँसुरी के प्रति ईर्ष्या भाव जगता है।

आशय — गोपियाँ एक दूसरे से कहती हैं कि हे सखी, कृष्ण तो बस बाँसुरी के होकर रह गये, अब हमें कौन चाहेगा? यह बाँसुरी तो दिनरात उनके साथ लगी रहती है, वह शीत ताप भला क्यों सहे। इसने तो मोहन के मन को मोह रखा है।

काव्य-पाठ ― बिहारी ― वीणा कुमारी

① मेरी भव ― ― द्युति होय
वे चतुर राधिकाजी मेरे सांसारिक कष्टों को दूर करें जिनके गोरे शरीर की छाया पड़ने से श्रीकृष्ण की देह की काँति हरी हो जाती है अर्थात श्रीकृष्णजी राधिकाजी की सुंदर मूर्ति को देखकर प्रसन्न हो जाते हैं। [ अलंकार → काव्यलिङ्ग ]

② (ii) मोर मुकुट ― ― बिहारीलाल
जिन बिहारीलाल (श्रीकृष्ण) के सिर पर मोर का मुकुट, कटि में पीताँबर की फेंट, हाथ में मुरली और वक्षस्थल पर सुन्दर माला शोभित है वे, इसी रूप में मेरे मन में निवास करें। [ अलंकार → स्वाभावोक्ति ]

② (iii) भृकुटि-मटकनि - - - - - - - - - - - - - बिहारी लाल
⇒ (नायिका सखी से कहती है) श्रीकृष्ण ने भौंहों की मटक पीताम्बर की चमक, इठलाती चाल, और चंचल आँखों की चितवन ने मेरे चित्त को चुरा लिया है। [ अलंकार → समुच्चय ]

③ (iv) जिन-दिन - - - - - - - - - - - - - - - - कँटीली डार
⇒ जिन दिनों में तुमने वे फूल देखे थे वह बहार तो बीत गई, (वसन्त ऋतु चला गया) अब तो गुलाब की बिना पत्तियों वाली कँटीली डालियाँ ही रह गई हैं। [ अलंकार → अन्योक्ति ]

④ V- चटक न छाँड़तु - - - - - - - - - - - - - चोल- रँग चीरु।
⇒ सज्जनों का गंभीर प्रेम घट जाने पर भी अपनी चटक नहीं छोड़ता। जिस प्रकार बिल्कुल फट जाने पर भी मजीठ के रँग में रँगे हुए कपड़े का रँग फीका नहीं पड़ता।
[ अलंकार → आवृत्ति दीपक ]

DATE

(14) जब-जब - - - - - - - - - - - - लागतिं नहीं।
XV (नायिका सखी से कहती है) जब जब मैं उनकी याद करती हूँ सब सुध-बुध भूल जाती हूँ। मेरी आँखें उनकी आँखों में लगी रहती हैं इसलिए मेरी आँखें नहीं लगतीं। (अर्थात नींद नहीं आती) [अलंकार > पूर्वार्द्ध में यमक, उत्तरार्द्ध में विरोधाभास]

(15) जप माला - - - - - - - - - - - - - - साँचे राम।।
XVI > जप, माला, छापा, तिलक इनसे कुछ भी सिद्ध न होगा क्योंकि मन के कच्चे होने से यह सब नाच (आडंबर) व्यर्थ है। ईश्वर तो सच्चाई पर रीझते हैं। इसलिए सच्चे मन से ईश्वर का भजन कर) [अलंकार - परिसंख्या और अनुप्रास]

(16) यहि बिरिया - - - - - - - - - पार परैगाहि
XVII > इस समय में और दूसरे किसी उपाय से काम नहीं चल सकता। उसी मल्लाह को ढूँढ जिसने पत्थर की नाव पर चढ़कर बहुतों समुद्र पार किया था, अर्थात श्री रामचन्द्र जी का भजन कर जिन्होंने पत्थरों से समुद्र पर पुल बाँधकर बहुतों को पार उतार था। [अलंकार - पर्यायोक्ति]

(17) भजन कह्यो - - - - - - - - - - - - भज्यो गंवार।
XVIII > ऐ गँवार! जिसका भजन करने को कहा था उसका एक बार भी भजन किया न और जिससे दूर रहने को कहा उसी का तूने भजन किया। [अलंकार > यमक]

Teacher's Signature........

PAGE NO.
DATE / /

(5)

vi- कनक कनक - - - - - - - - - - - - - - पाएँ बौराइ॥

⇒ कनक की (धतूरा) अपेक्षा कनक (सोना) में सौ गुना अधिक नशा करने का गुण है, क्योंकि धतूरे के खाने से मनुष्य बौराता है, लेकिन सोने को पाने से ही बौरा जाता है। [अलंकार → काव्यलिङ्ग]

vii- को छूटमो - - - - - - - - - - - - - - उरझत जात।

⇒ ऐ हरिण! तुम क्यों छटपटाते हो, इस जाल में पड़कर कौन इससे छूटा है। ज्यों ज्यों तू सुलझ कर भागना चाहता है त्यों-त्यों और अधिक उलझता जाता है [अलंकार - अन्योक्ति]

viii- समय-समय - - - - - - - - - - - - - - रुचि होइ॥

⇒ कवि की प्रास्तावित उक्ति है कि मनुष्य संसार की सब वस्तुएँ समय-समय पर अपनी रुचि के अनुसार सुन्दर लगती है, वास्तव में ईश्वरीय सृष्टि की कोई वस्तु कुरूप अथवा दृष्टिक्षेप करने योग्य नहीं है। उस परम सौन्दर्यमय सर्वव्यापी सृष्टिकर्ता की सृष्टि में कोई कुरूप नहीं है, समय-समय अपने अपने अवसर पर सब ही सुन्दर लगते हैं। मनुष्य के मन की रुचि (चाह) जिस समय जिस ओर जितनी होती है, उस समय उस ओर (उस वस्तु के प्रति) उतनी रुचि शोभा हो जाती है। (जान पड़ने लगती है।)

ix- जो चाहत - - - - - - - - - - - - - - चीकने चित

⇒ हे मित्र! अगर तुम चाहते हो कि चित्त की चमक मन्द न पड़े और मैला न हो तो स्नेह (तेल, प्रेम) से चिकनाये हुए चित्त में रजोगुण (क्रोध, लोभ) रूपी रज (धूल) को न छुआओ अर्थात मित्र से अहंकार, क्रोध, लोभ आदि का भाव मत दिखाओ। [अलंकार-अन्योक्ति]

x- संगति सुमति - - - - - - - - - - - - - - होत सुगंध।

जो कुमति के हाथों में पड़ा रहता है वह अच्छी संगति पाकर भी सुबुद्धि नहीं पाता है। जैसे हींग को कपूर के साथ रखो तो भी उसमें वह सुगन्ध नहीं आती।
[अलंकार → सूक्ष्म]

Teacher's Signature ..................